वैदिक परिदृश्य में नारी और ऋषिका गार्गी

प्रो. युगलकिशोर मिश्र*

वैदिक चिन्तन में जगत्स्रष्टा प्रजापति के शरीर के दक्षिण भाग से पुरुष की उत्पत्ति एवं वाम भाग से नारी की उत्पत्ति वर्णित है। इस प्रतीकात्मक कथन में वेद का यह संदेश है कि सृष्टि में पुरुष एवं नारी का समभाव है तथा मानव जाति को अपने व्यवहार में इसका ध्यान रखना चाहिये। *बृहद्धर्मपुराण* (पूर्वार्द्ध अ. 2 श्लो. 34 एवं 40) के एक प्रसंग में महर्षि जाबालि ने महर्षि व्यास से प्रश्न किया कि तीनों लोकों में अतिश्रेष्ठ तत्त्व कौन-कौन से हैं? इस पर महर्षि व्यास ने उत्तर दिया–

नास्ति गंगासमं तीर्थं नास्ति विष्णुसमः प्रभुः।
नास्ति शंभुसमः पूज्यो नास्ति मातृसमो गुरुः।।
मातरं पितरं चोभौ दृष्ट्वा पुत्रस्तु धर्मवित्।
प्रणम्य मातरं पश्चात् प्रणमेत् पितरं गुरुम्।।

अर्थात् "गंगा के समान अतिश्रेष्ठ तीर्थ कोई नहीं है, विष्णु के समान संसार का पालनहार स्वामी कोई नहीं है, भगवान शिव के समान अतिपूज्य कोई नहीं है तथा माता (स्त्री शक्ति) के समान अतिश्रेष्ठ गुरु अन्य कोई नहीं है। माता एवं पिता के एक साथ उपस्थित होने की स्थिति में विचारवान् पुत्र का कर्त्तव्य है कि वह सर्वप्रथम अपनी माता को प्रणाम करे तत्पश्चात् पिता को प्रणाम करे।"

उपर्युक्त के अतिरिक्त *मानव धर्मसूत्र* (21/45) में मातृशक्ति का गौरव उपाध्याय (विद्याध्ययन कराने वाले शिक्षक) से 10 लाख गुना, आचार्य से लाख गुना तथा पिता से हजार गुना अधिक बतलाया गया है।

महान् दार्शनिक भगवत्पाद आद्य श्रीशंकराचार्य के विषय में यह कहा जाता है कि उन्होंने बाल्यावस्था में ही संन्यास ग्रहण कर सभी सांसारिक सम्बन्धों को त्याग कर पूरे देश की पैदल यात्रा की एवं अध्यात्म शक्तिसम्पन्न होकर उपनिषदों एवं ब्रह्मसूत्र का अद्वैतवेदान्तपरक अद्भुत भाष्य लिखा। अपने जन्मस्थान केरल से अत्यन्त दूर हिमालय पर्वत के आसपास जब वे थे तब उन्हें योगशक्ति से ऐसा अनुभव हुआ कि उनकी माता अब अधिक दिन जीवित नहीं रह सकेंगी। तब वे अपनी माता की सेवा करने एवं अन्तिम समय में उनका आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए वापस केरल लौटे। संन्यास ग्रहण करने के पश्चात् सभी भौतिक सम्बन्धों का परित्याग कर दिया जाता है। अतः ग्रामवासियों ने भगवत्पाद शंकराचार्य के इस कार्य का विरोध किया, किन्तु भगवत्पाद शंकराचार्य ने इसका दृढ़ता से प्रतिरोध करते हुए यह कहा कि यद्यपि संन्यास में मनुष्य सभी सम्बन्धों का परित्याग कर देता है किन्तु माता का ऋण मनुष्य पर इतना अधिक है कि उसे सर्वथा तोड़ना या अमान्य करना कथमपि उचित नहीं है। भगवत्पाद शंकराचार्य की मातृशक्ति के सम्बन्ध में सम्मानास्पद प्रसिद्ध उक्ति इस प्रकार है–

आस्तां तावदियं प्रसूतिसमये दुर्वार-शूलव्यथा
नैरुच्यं तनुशोषणं मलमयी शय्या च सांवत्सरी।

---

* पूर्व प्रति-कुलपति एवं विभागाध्यक्ष, वैदिक शास्त्र, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

एकस्यापि न गर्भभारभरणक्लेशस्य यस्याः क्षमो
दातुं निष्कृतिमुन्नतोपि तनयस्तस्यै जनन्यै नमः।।

(शंकराचार्य : विचार और सन्दर्भ पृ. 27)

कहा जाता है कि भगवत्पाद शंकराचार्य ने संन्यासी होते हुए भी अपनी रुग्ण माता की पूर्ण सेवा की और उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। माता की मृत्यु हो जाने पर उन्होंने घोर विरोध के उपरान्त भी शास्त्रीय विधि से उनका और्ध्वदैहिक क्रियाकलाप एवं श्राद्ध सम्पन्न किया। मातृशक्ति के प्रति निष्ठा का यह आदर्श एवं क्रान्तिकारी उदाहरण है।

उपर्युक्त वेद, पुराण, धर्मशास्त्र एवं भगवत्पाद शंकराचार्य के सन्दर्भों से यह सुस्पष्ट है कि भारतीय चिन्तन में मातृशक्ति (नारी) का सर्वोत्तम स्थान है। इन सबको दृष्टिगत करते हुए प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान 'नीत्से' का यह कथन बड़ा हृदयस्पर्शी है–

"I know of no book in which so many delicate and kindly things are said of the women as in the law-book of Manu; these old grayheads and saints have a manner of being gallant to women which perhaps can not be surpassed."

(Anti Christ pp. 214-15)

उपर्युक्त के अतिरिक्त यह भी ज्ञातव्य है कि वैदिक संस्कृति में यज्ञ एक अत्यन्त श्रेष्ठ एवं महनीय कर्म है जिसमें पुरुष का अधिकार स्त्री के साथ ही बतलाया गया है। इस प्रसंग में यह रेखांकित करने योग्य बात है कि 'सोमयाग' जैसे बड़े यज्ञ; जिसका फल स्वर्ग बतलाया गया है, में दीक्षित होने वाले यजमान के लिये कई नियम निर्देशित हैं यथा–सत्य बोलना, किसी भी अवस्था में क्रोध न करना, सुसंस्कृत वाणी का व्यवहार करना तथा किसी भी परिस्थिति में नियम के विपरीत आचरण न करना आदि। प्रमाद अथवा मनुष्य की सहज मानसिक अस्थिरता के कारण यदि उपर्युक्त नियमों के विरुद्ध किसी प्रकार का आचरण (कायिक, वाचिक तथा मानसिक) होता है तो उसका परिशोधन किस प्रायश्चित्त से होगा? इस सम्बन्ध में शास्त्र का निर्देश है कि–सामयोग में दीक्षित यजमान यदि अपनी पत्नी से "पत्न्युपह्वयस्व" (हे पत्नी! मुझे क्षमा कर दो) यह वाक्य बोलकर क्षमायाचना कर ले तो उसके द्वारा किये नियमभंग दोष का शमन अथवा प्रायश्चित्त हो जाता है। शास्त्रकारों का यह अद्वितीय विधान नारीशक्ति को सर्वश्रेष्ठ स्थान देने का अद्‌भुत उदाहरण है जो कि विश्व की किसी अन्य संस्कृति में अनुपलब्ध है। इससे वैदिक संस्कृति में नारी के श्रेष्ठ स्थान का दिग्दर्शन होता है।

यह भी मननीय है कि वैदिक संस्कृति में वैवाहिक सम्बन्ध के पश्चात् स्त्री-पुरुष के लिये "दम्पती" शब्द का प्रयोग होता है। "दम्पती' शब्द पूर्णतया वैदिक शब्द है जो कि 'दमस् + पति' इन दो शब्दों के संयोग से बना है। *ऋग्वेद* के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त में 'दमस्' शब्द का प्रयोग 'गृह' (घर) के अर्थ में हुआ है। लैटिन भाषा में भी यह शब्द 'दमोस्' के रूप में उपलब्ध है जिसका अर्थ 'घर' है। अंग्रेजी में भी 'दमोस्' शब्द घर के अर्थ में ही प्रयुक्त है तथा इससे निष्पन्न (Domestic) शब्द उसी अर्थ का वाचक है। 'पति' शब्द स्वामी के अर्थ में प्रसिद्ध है। इस प्रकार 'दमस् + पति = दम्पती' का शाब्दिक अर्थ "घर के दो स्वामी" होता है। संस्कृत का यह शब्द इस बात की ओर संकेत करता है कि भारतीय संस्कृति में स्त्री और पुरुष, घर के बराबर के स्वामी हैं। अतः वैदिक संस्कृति में नारी का समानाधिकार सर्वमान्य तथ्य है।

वैदिक परिदृश्य में नारी की उपर्युक्त पूर्वपीठिका के बाद अब ऋषिका गार्गी के बौद्धिक योगदान के विषय

में चर्चा किया जाना अवसरप्राप्त है। जैसा कि विदित है, वैदिक संस्कृति में पाञ्चभौतिक शरीर से अतिरिक्त आत्मा की सत्ता स्वीकार की जाती है। प्रत्येक प्राणी का अपने शरीर के संरक्षण हेतु जिस प्रकार भोजनाच्छादनादि आवश्यक कर्त्तव्य हैं उसी प्रकार आत्मा के प्रति भी कतिपय आवश्यक कर्त्तव्य हैं। आत्मा को उन्नत करने वाले आचरण ही 'धर्म' शब्द से कहे जाते हैं। व्रत - उपवास, अनुष्ठान-उपासना आदि इसी कोटि में आते हैं। *बृहदारण्यकोपनिषद्* में राजर्षि जनक की सभा में ऋषिका गार्गी और याज्ञवल्क्य का संवाद 'आत्म तत्त्व' (ब्रह्म तत्त्व) के विषय में वर्णित है। वाचक्नु की पुत्री गार्गी ने याज्ञवल्क्य से प्रश्न किया कि–हे याज्ञवल्क्य! परिदृश्यमान पार्थिव धातु-समुदाय अप् (जलों) में ओतप्रोत है क्योंकि कार्य अर्थात् परिच्छिन्न और स्थूल तत्त्व, कारण अर्थात् परिच्छिन्न और सूक्ष्म तत्त्व से व्याप्त रहता है। किन्तु जल आदि किसमें ओतप्रोत है? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि अप् (जल) वायु में, वायु अन्तरिक्ष में, अन्तरिक्ष गन्धर्वलोक में, गन्धर्वलोक आदित्यलोक में, आदित्यलोक चन्द्रलोक में, चन्द्रलोक नक्षत्रलोकों में, नक्षत्रलोक देवलोक में, देवलोक इन्द्रलोक मे, इन्द्रलोक प्रजापति लोक में। गार्गी ने पुनः पूछा कि प्रजापति लोक किसमें ओतप्रोत है? तब याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि प्रजापति लोक अतिसूक्ष्म, अदृश्य 'ब्रह्म' में ओतप्रोत है। उस ब्रह्मतत्त्व को ब्रह्मवेत्ता 'अक्षर' कहते हैं। वह न स्थूल है, न अणु है, न छोटा है, न बड़ा है, न छाया है, न तम है। वह निर्गुण है तथा निराकार है। तात्पर्य यह है कि वह समस्त विशेषणों से रहित है, अद्वितीय है तथा सर्वोपरि है। इस ब्रह्मतत्त्व के प्रशासन में सूर्य, चन्द्रमा, द्युलोक, पृथ्वीलोक, ऋतु, काल आदि सभी स्थित रहते हैं। इस 'अक्षर' ब्रह्म के ज्ञान से मानव के कर्म अक्षयशील हो जाते हैं और वह मुक्ति या परमपद का अधिकारी बन जाता है। वह अक्षर ब्रह्म ही पराकाष्ठा है, परागति है और पृथ्वी से लेकर आकाश पर्यन्त समस्त सत्य का सत्य है।

गार्गी स्वयं ब्रह्मवादिनी थी और उसने याज्ञवल्क्य से परब्रह्म विषयक प्रश्न इसलिए पूछे थे कि सभा में उपस्थित सभी लोगों को परमसत्य की जानकारी हो सके। गार्गी के प्रश्नों के भीतर तीन निहितार्थ इस प्रकार थे–

(1) ब्रह्मतत्त्व की सत्ता है या नहीं?

(2) ब्रह्मतत्त्व अदृश्य है, अतः उसकी सत्ता एवं शक्ति की महत्ता को कैसे सिद्ध किया जाए?

(3) ब्रह्मतत्त्व सब अवस्थाओं से परे, गुणधर्म रहित एवं अनिर्वचनीय है, इस बात को कैसे बोधगम्य कराया जाए?

गार्गी के इन प्रश्नाभिप्रायों के उत्तर निम्नलिखित रूप में उपस्थित होते हैं–

(1) प्रकृति को देखने पर यह अनुभव होता है कि सम्पूर्ण प्रकृति एक निश्चित एवं अविच्छिन्न ढंग से मर्यादित व्यवस्था के अधीन अनन्त काल से चल रही है। निश्चित एवं मर्यादित व्यवस्था-संचलन के पीछे किसी तत्त्व का होना अपरिहार्य आवश्यकता है; अन्यथा अनन्तकाल तक निश्चित एवं मर्यादित व्यवस्था नहीं चल सकती। अतः प्रकृति का नियमित, निश्चित, मर्यादित, सतत संचलन ही किसी चेतन तत्त्व की सत्ता को स्वतः सिद्ध करता है।

(2) ब्रह्म– (परतत्त्व) के अदृश्य एवं अगोचर होते हुए भी सर्वोच्च शक्ति सम्पन्नता के विषय में शास्त्रों का कहना है कि स्थूल तत्त्व सीमित शक्ति वाला होता है और जो जितना सूक्ष्म होता है वह उतना ही अधिक शक्तिमान् होता है। उदाहरणार्थ– पञ्चमहाभूतों से बना मनुष्य का शरीर एवं कर्मेन्द्रियाँ स्थूल हैं और उनकी शक्ति सीमित है किन्तु 'मनस् तत्त्व' अदृश्य एवं सूक्ष्म है किन्तु वह सर्वाधिक शक्तिशाली है। मन की गति अपरिमित है। वह एक क्षण में सात समुद्र पार जाने की क्षमता रखता है तथा मनुष्य के शरीर एवं कर्मेन्द्रियों को संचालित करता है। मन के न चाहने पर मनुष्य न तो चल सकता है, न खा सकता है, न पढ़ सकता है और न ही सो सकता है। अतः यह

सिद्ध होता है कि स्थूल से सूक्ष्म तत्त्व अधिक शक्तिशाली एवं महनीय सत्ता वाला होता है। अतः अगोचर (ब्रह्म) तत्त्व सर्वोच्च शक्तिशाली है यह बात सिद्ध हो जाती है।

(3) अक्षरतत्त्व निर्गुण, निर्विकार एवं अनिर्वचनीय है। इस तथ्य को बुद्धिगम्य करने के लिए यह ध्यातव्य है कि– मनुष्य के पास अवस्था या गुण पहचानने या देखने की ही शक्ति होती है। अवस्थाओं को हटाकर मूलतत्त्व को जानने की शक्ति हमारी इन्द्रियाँ या मन नहीं रखते हैं। उदाहरणार्थ– हम अंगुलि में अंगूठी धारण करते है, यह स्वर्ण की एक अवस्था है। इसके पूर्व स्वर्ण (सोना, Gold) गोली, चिपटी या छोटी छड़ के रूप में रहा होगा। किन्तु ये भी स्वर्ण की अवस्थायें ही थीं। इन सब अवस्थाओं को हटाकर शुद्ध स्वर्ण-तत्त्व न कहीं ध्यान में आता है और न कहीं दिखाई दे सकता है। अतः यह सिद्ध होता है कि मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियाँ पदार्थ की अवस्थाओं को ही जानने की शक्ति रखती हैं, मूलतत्त्व को नहीं।

यदि पदार्थ की अवस्थायें ही सब कुछ होती तो सभी अवस्थाओं में अनुगत रहने वाले एक रूप की प्रत्यभिज्ञा (पहचान) कैसे हो सकती थी? अँगूठी, कटक, कुण्डल, सिकड़ी, टिकड़ी आदि रूपों को देखकर, यह स्वर्ण (Gold) है, इस प्रकार की पहचान हमें तत्काल हो जाती है। इससे यह बात सामने आती है कि न बदलने वाला स्वर्ण एक मुख्य तत्त्व है और पूर्वोक्त अवस्थायें उसमें आगन्तुक हैं अर्थात् आती-जाती हैं। कार्य-कारण भाव का यही प्रकार है कि जो अनुगत रहे उसे 'कारण' समझा जाता है और जिनमें अनुगत रहे उसे 'कार्य'। इसी प्रक्रिया से जब देखेंगे कि जिसे स्वर्ण (Gold) कहा जाता है वह भी तेज एवं पृथ्वी के अंशों से बना है। इसलिए उनकी अवस्था मात्र है। तेज और पृथ्वी भी किसी तत्त्व की अवस्थायें हैं। इस प्रकार चिन्तन में अग्रसर होने पर मूल तत्त्व पर पहुँचा जा सकेगा किन्तु उसका मन में आना या वाणी के द्वारा कहना संभव नहीं होगा; क्योंकि मूलतत्त्व सभी अवस्थाओं से रहित है। इसलिए न उसका कोई नामकरण हो सकता है और न कोई गुण या धर्म ही उसमें कहे जा सकते हैं। अतएव श्रुति मूलतत्त्व को मन एवं वाणी से परे बताती है और अनिर्वचनीय कहती है। गार्गी ने अपने प्रश्नों के माध्यम से याज्ञवल्क्य के मुख से निहितार्थ प्रस्तुत करवाया। अतः वैदिक परिदृश्य में ऋषिका गार्गी का स्थान अत्यन्त ऊँचा एवं श्रेष्ठ है। गार्गी ने याज्ञवल्क्य की परीक्षा लेकर यह निर्णय दिया कि अब इन पर ब्रह्मोद्य में कोई विजय प्राप्त नहीं कर सकता (न वै जातु युष्माकमिमं कश्चिद् ब्रह्मोद्यं जेतेति)।

वैदिक ऋषिका गार्गी ने प्रश्नोत्तर के माध्यम से लोकमङ्गल के लिए ब्रह्मतत्त्व के रहस्य को उद्भासित किया जो कि भारतीय नारी के अतुलनीय वैदुष्य एवं योगदान को स्पष्ट करता है।

•